## संपादकीय

# सोशल मीडिया पर हिंसा और नफरत के हमलों पर सरकारों को कार्रवाई करना ही चाहिए

ट्विटर पर एनडीए के राष्ट्रपति-प्रत्याशी रामनाथ कोविंद के नाम से खोले गए एक अकाऊंट में उनकी तस्वीर भी लगी है, और उसे विश्वसनीय बनाने के लिए उस पर प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की दर्जनों ट्वीट भी री-ट्वीट की गई हैं। लेकिन कोविंद के नाम से पोस्ट की गई ट्वीट देखें तो उन पर यूपीए की राष्ट्रपति-प्रत्याशी मीरा कुमार के बारे में बड़ी भद्दी बातें लिखी गई हैं। एक तरफ तो भारत का आईटी कानून अखबारों के लिए बने कानूनों के मुकाबले बहुत अधिक कड़ा है, और उस पर बड़ी कड़ी सजा का इंतजाम भी है। दूसरी तरफ सोशल मीडिया पर हर तरह की विचारधारा वाले जिस आक्रामक और हमलावर तरीके से रात-दिन हिंसा और अश्लीलता की बातें करते हैं, उस पर मानो सरकार का कोई काबू नहीं है, और देश का कोई कानून लागू नहीं है।

हमारा मानना है कि आज चाहे सत्तारूढ़ एनडीए के समर्थक ही क्यों न अधिक हिंसक बातें पोस्ट कर रहे हों, इस सिलसिले को थामने के लिए केन्द्र सरकार को कड़ी कार्रवाई करनी चाहिए। दूसरी तरफ राज्य सरकारें भी यह कार्रवाई कर सकती हैं, और आज जब तक किसी बड़े नेता के बारे में कोई दूसरा बड़ा नेता कुछ न लिखे, तब तक आमतौर पर कानून तक कोई दौड़ नहीं लगती। आज किसी खिलाड़ी या फिल्म सितारे, या कि किसी चर्चित अखबारनवीस या टीवी पत्रकार के खिलाफ भयानक हिंसक और फूहड़ बातें की जाती हैं। सोच-समझकर साम्प्रदायिक नफरत फैलाने वाली बातें पोस्ट की जाती हैं। झूठी तस्वीरें झूठे संदर्भ सहित पोस्ट करके तनाव खड़ा किया जाता है। और कम्प्यूटर-इंटरनेट पर सुबूत इतनी आसानी से रहने के बावजूद सरकारें कार्रवाई नहीं कर रही हैं। यह सिलसिला और लोगों को और गैरजिम्मेदार, और हिंसक, और हमलावर बनाता है, और ऐसे लोगों में से जब तक रोजाना कहीं न कहीं कुछ लोगों को कैद न हो, लोग समझदार नहीं हो पाएंगे।

भारत में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता कुछ जिम्मेदारियों के साथ ही मिली हुई हैं। दूसरे लोगों के सम्मान, उनकी भावनाओं को कुचलते हुए लोग अपनी अभिव्यक्ति अगर करते हैं, तो उनके खिलाफ कानून बने हुए हैं। बहुत बड़े अरबपति लोग तो अपने वकील करके अदालत तक जाते हैं, और सोशल मीडिया पर आपत्तिजनक पोस्ट करने वाले लोगों को घसीटते हैं। दूसरी तरफ आम लोग या ऐसे लोग जो कि बड़ी अदालतों तक का खर्च नहीं उठा सकते, वे चुपचाप बैठ जाते हैं। दरअसल ट्विटर और फेसबुक जैसे सोशल मीडिया का मुख्यालय अमरीका में है जहां पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की एक अलग सीमा है, और एक अलग कानून उस पर लागू होता है। वहां पर जो बातें गैरकानूनी नहीं हैं, वे भी हिन्दुस्तानी कानून में गैरकानूनी हैं। अब यहां ट्विटर या फेसबुक को तो शायद रोज अदालत में नहीं घसीटा जा सकता, लेकिन भारतीय कानून का इस्तेमाल करके उन हिन्दुस्तानियों को जरूर कटघरे में लाया जा सकता है जो कि यहां बैठे हिंसा और नफरत की बातें करते हैं, दूसरों का सुख-चैन तबाह करते हैं।

लोगों को अपने परिवार, अपनी पार्टी, अपने दफ्तर, और अपने दायरे के लोगों को भी सावधान करना चाहिए कि डिजिटल सुबूत कभी मिटते नहीं है, लोग लिखने के बाद चाहे उसे मिटा डालें, लेकिन एक बार पोस्ट की गई बातें कभी खत्म नहीं होती हैं, वे सुबूत के लिए कम्प्यूटरों पर दर्ज रहती हैं। इसलिए अगर हिफाजत से रहना है, तो जिम्मेदारी से ही सोशल मीडिया पर रहना होगा।

## एक ग़ज़ल गुनगुनाएं

फ़लक देता है जिनको ऐश उनको ग़म भी होते हैं
जहाँ बजते हैं नक़्क़ारे वहीं मातम भी होते हैं

गिले-शिकवे कहाँ तक होंगे आधी रात तो गुज़री
परेशाँ तुम भी होते हो परेशाँ हम भी होते हैं

जो रक्खे चारागर काफ़ूर दूनी आग लग जाए
कहीं ये ज़ख़्म-ए-दिल शर्मिंदा-ए-मरहम भी होते हैं

वो आँखें सामरी-फ़न हैं वो लब ईसा-नफ़स देखो
मुझी पर सहर होते हैं मुझी पर दम भी होते हैं

ज़माना दोस्ती पर इन हसीनों की न इतराए
ये आलम-दोस्त अक्सर दुश्मन-ए-आलम भी होते हैं

ब-ज़ाहिर रहनुमा हैं और दिल में बद-गुमानी है
तेरे कूचे में जो जाता है आगे हम भी होते हैं

हमारे आँसुओं की आबदारी और ही कुछ है
कि यूँ होने को रौशन गौहर-ए-शबनम भी होते हैं

ख़ुदा के घर में क्या है काम ज़ाहिद बादा-ख़्वारों का
जिन्हें मिलती नहीं वो तिश्ना-ए-ज़मज़म भी होते हैं

हमारे साथ ही पैदा हुआ है इश्क़ ऐ नासेह
जुदाई किस तरह से हो जुदा तवाम भी होते हैं

नहीं घटती शब-ए-फ़ुर्क़त भी अक्सर हम ने देखा है
जो बढ़ जाते हैं हद से वो ही घट कर कम भी होते हैं

बचाऊँ पैरहन क्या चारागर मैं दस्त-ए-वहशत से
कहीं ऐसे गरेबाँ दामन-ए-मरयम भी होते हैं

तबीयत की कजी हरगिज़ मिटाए से नहीं मिटती
कभी सीधे तुम्हारे गेसू-ए-पुर-ख़म भी होते हैं

जो कहता हूँ कि मरता हूँ तो फ़रमाते हैं मर जाओ
जो ग़श आता है तो मुझ पर हज़ारों दम भी होते हैं

किसी का वादा-ए-दीदार तो ऐ *दाग़* बर-हक़ है
मगर ये देखिए दिल-शाद उस दिन हम भी होते हैं।

**-दाग़ देहलवी**

# क्रिकेट ने दूसरे खेलों का गला घोंटा है ?

■ **दीपक गोस्वामी**

लंबे समय से भारत में क्रिकेट की लोकप्रियता को अन्य खेलों के लिए खतरा बताया जाता रहा है। एक तबका ऐसा भी है जो मानता है कि क्रिकेट की लोकप्रियता कॉरपोरेट घरानों की देन है। क्रिकेट कॉरपोरेट और सत्ता का खेल है और इन्हें ही लाभ पहुंचाने के लिए खेला जाता है। इसलिए इस खेल से परहेज किया जाये और इसकी लोकप्रियता को नशा न बनने दिया जाये, अन्यथा कॉरपोरेट और सत्ताधारियों की चांदी कटती रहेगी।

लेकिन अगर विचार करें तो कॉरपोरेट के खेल में हर खेल ही तब्दील हो चला है। फुटबॉल से लेकर हॉकी, बैडमिंटन, कुश्ती, टेनिस, कबड्डी सभी खेलों में कॉरपोरेट घरानों की दखल है। प्रीमियर बैडमिंटन लीग, प्रो कबड्डी लीग, प्रो रेसलिंग लीग क्या बिना कॉरपोरेट के दखल के आयोजित हो रही हैं?

फिर सिर्फ क्रिकेट में कॉरपोरेट के दखल का विरोध क्यों?

देश के विभिन्न खेल संघ जो सरकार के अधीन हैं, सभी में कॉरपोरेटर और नेताओं का हस्तक्षेप है। हर संघ में वे बड़े पदों पर काबिज हैं। खेल संघ के अंदर आर्थिक धांधली के आरोप उन पर अदालतों में चल रहे हैं। भारतीय ओलंपिक संघ (आईओए) में भ्रष्टाचार किसी से छिपा नहीं। कहते हैं कि बीसीसीआई को भ्रष्टाचार का रोग लगा है, पर रोग तो वो भी है कि छह वर्षों से अब तक खेल मंत्रालय स्पोर्टस कोड अपने अधीन खेल संघों में लागू नहीं करा पाया। क्योंकि खेल संघ करना नहीं चाहते, उनके पदाधिकारियों के निहित स्वार्थ इसके आड़े आ रहे हैं। देश के आधे से ज्यादा खेल संघ इसी के चलते भंग पड़े हैं।

बॉक्सिंग फेडरेशन का हाल देखिए। ओलंपिक में खिलाड़ी उतरते हैं पर भारतीय ध्वज के साथ नहीं, क्योंकि हमारे संघ के पास अंतरराष्ट्रीय मुक्केबाजी संघ की मान्यता ही नहीं रहती। ऐसा सिर्फ इसलिए क्योंकि यहां भ्रष्टाचार है, सरकारी हस्तक्षेप है, अपारदर्शिता है।

आपको शिकायत है कि कॉरपोरेटर एन. श्रीनिवासन बीसीसीआई के अध्यक्ष रहे। लेकिन श्रीनिवासन के ही भाई एन। रामचंद्रन भी तो आईओए के अध्यक्ष हैं। जिन पर हॉकी इंडिया के अध्यक्ष नरिंदर बत्रा ने कई संगीन आरोप लगाए हैं। वहीं आईओए पर आए दिन अंतरराष्ट्रीय ओलंपिक संघ प्रतिबंध लगाता ही रहा है।

इसलिए क्रिकेट में कॉरपोरेट के दखल के चलते क्रिकेट को अछूता बनाने के बजाय जरूरत यह समझने की है कि यह बदलाव क्यों आया! आखिर क्यों कॉरपोरेट घराने खेलों में एंट्री पाने में सफल रहे और खेल उन पर निर्भर हो गये! ऐसा सिर्फ इसलिए हुआ क्योंकि सरकारें खेलों को प्रोत्साहन देने में नाकामयाब रहीं।

फुटबॉल को सरकारी छाते का सहारा रहा। भारतीय फुटबॉल टीम ने ओलंपिक खेला, लेकिन आज कहां खड़ा है भारत। पांच दशक से अधिक लंबा सफर तय कर लिया। ओलंपिक में भाग लेने के बाद हमें जमीन से उठकर आसमान में पहुंचना था, पर हम पाताल पहुंच गये। सरकारी तंत्र खा गया फुटबॉल को।

बास्केटबॉल आज देश में कांग्रेस-भाजपा की कुश्ती का अखाड़ा बना है। खिलाड़ी देश के बाहर भविष्य खोज रहे हैं। खेल मंत्रालय की भूमिका स्वयं पूरे मामले में संदिग्ध है।

> कहते हैं कि बीसीसीआई को भ्रष्टाचार का रोग लगा है, पर रोग तो वो भी है कि छह वर्षों से अब तक खेल मंत्रालय स्पोर्ट्स कोड अपने अधीन खेल संघों में लागू नहीं करा पाया। क्योंकि खेल संघ करना नहीं चाहते, उनके पदाधिकारियों के निहित स्वार्थ इसके आड़े आ रहे हैं। देश के आधे से ज्यादा खेल संघ इसी के चलते भंग पड़े हैं।

वेटलिफ्टिंग नशे की गिरफ्त में है। और खुद एसोसिएशन इसमें लिप्त है, ऐसा वेटलिफ्टिंग एसोसिएशन से जुड़े रहे एक कोच खुद बताते हैं। लेकिन सरकार ने वेटलिफ्टिंग में डोपिंग की रोकथाम की क्या नीति बनाई? एक कोच ने ऐसे संगीन आरोप लगाये, तो क्या उनकी जांच कराई?

ऐसी ही व्यवस्था हॉकी को खा गयी। स्पोर्ट्स अथॉरिटी ऑफ इंडिया (साई) में अनियमितताएं भी उजागर हैं। कॉमनवेल्थ घोटाला भी कौन भूल सकता है!

कह सकते हैं कि जब सरकारें खेलों को संभाल न सकीं, तब कॉरपोरेटर खेलों में दखल बना सके। खेलों को अपना स्तर उठाने के लिए उनकी जरूरत हुई। आज लगभग हर नामी एथलीट किसी न किसी कॉरपोरेटर के रहमो-करम पर खेल रहा है। वे उन्हें स्पांसर कर रहे हैं और उनकी लोकप्रियता के जरिए कमा रहे हैं। इसलिए सिर्फ क्रिकेट ही सत्ता और कॉरपोरेट का खेल नहीं, सारे खेल ही सत्ता और कॉरपोरेट के खेल बन गये हैं।

बस क्रिकेट के साथ एक अच्छी बात यह रही कि यहां लाख अनियमितताओं के बावजूद खेल का स्तर बना रहा। जबकि अन्य खेल जो सरकार के अधीन रहे, वहां अनियमितताएं इस कदर हुईं कि खेल ही रसातल में चले गये।

हालिया उदाहरण ओलंपिक में बॉक्सिंग और कुश्ती में पिछले ओलंपिक की अपेक्षा प्रदर्शन में आई गिरावट है। अब क्या ऐसी व्यवस्था के हवाले क्रिकेट को भी इसलिए कर दिया जाये कि वो सरकारी टीम कहलाए, न कि बीसीसीआई की।

इसलिए भले ही क्रिकेट पर कॉरपोरेट का कब्जा हो, पर जरा दूसरे खेलों पर नजर गड़ाइए, वहां दशकों से किनका कब्जा है! क्या चल रहा है! तब ज्ञात होगा सच। लेकिन क्रिकेट की आलोचना आसान है क्योंकि हमें क्रिकेट की ही तो जानकारी है बस।

दूसरे खेलों में भी यही चल रहा है। लेकिन जो मीडिया है वो क्रिकेट पर ही फोकस करता है क्योंकि क्रिकेट लोकप्रिय है। तो किसी को अन्य खेलों का पता नहीं चलता। वहीं जिन लोगों को क्रिकेट से आपत्ति है, वे दूसरे खेलों की लोकप्रियता बढ़ाने के लिए क्या कर रहे हैं? क्यों उन खेलों को देखने नहीं जाते? सवाल यह भी है।

बात यह भी होती है कि एक क्रिकेटर पैसों के लिए खेलता है, देश के लिए नहीं। तो बात क्रिकेट के इतर दूसरे खिलाड़ियों की भी हो जाये। उन्हें पदक या देश के सम्मान की कितनी चिंता है! ये तब ही साबित हो गया था जब खेल मंत्रालय द्वारा चलाई गई टारगेट ओलंपिक पोडियम (टॉप) योजना के तहत उन्होंने पैसा लेने में और अपने परिजनों पर खर्च करने में धांधली की। इस पर देश के अंग्रेजी के एक प्रतिष्ठित अखबार ने बाकायदा एक श्रृंखला चलाई थी।

वहीं क्रिकेट की लोकप्रियता ने दूसरे खेलों को खाया नहीं, बल्कि खेलों के लिए भारतीय समाज में स्पेस कायम रखा। क्रिकेट का तो हमें शुक्रगुजार होना चाहिए कि अस्सी के दशक में जब हॉकी रसातल में जा रही थी, हॉकी के स्वर्णिम दौर को इसी व्यवस्था ने खा लिया था और खेलों से भारतीयों का मोह भंग हो रहा था, तब क्रिकेट ने ही देश में खेल संस्कृति को जीवित रखा।

**( बाकी पेज 8 पर )**

# शरणार्थी : जड़ों से उखड़ते लोग

■ **डॉ. सय्यद मुबीन जेहरा**
शिक्षाविद्

कहते हैं कि सब कुछ टूट जाए तो कुछ नहीं होता, लेकिन अगर आपके सपने टूट गए, तो आगे बढ़ना मुश्किल हो जाता है। इसलिए सपने देखना बहुत जरूरी है। अपना देश, अपनी जमीन, अपने लोग, अपनी भाषा, अपना माहौल हमारे जीवन में विशेष महत्व रखते हैं।

लोग अपने भविष्य को लेकर हसीन सपने बुनते हैं और उनको हासिल करने के लिए कोशिश भी करते हैं। लेकिन, क्या आपने कभी सोचा है कि उन सपनों का क्या होता होगा, जिनसे उनकी जमीन और आसमान छीन कर उन्हें दरबदर फिरने पर मजबूर कर दिया जाता है। अभी 20 जून को विश्व शरणार्थी दिवस बीता है, जो हमें इस ओर सोचने पर मजबूर करता है। विशेष कर के उन राष्ट्रों को तो जरूर इस बारे में सोचना चाहिए, जहां ऐसी शक्तियां भी सिर उठाती रहती हैं, जो शांति को भंग करके समाज में एक-दूसरे के विरुद्ध आपसी नफरत और द्वेष का बीजारोपण करना चाहती हैं। जिस का अंत में नतीजा पलायन ही निकलना है। कभी अपने ही देश में एक जगह से दूसरी जगह और कभी एक देश से दूसरे देश में पलायन।

शरणार्थी वह होता है, जिसे राजनीतिक-सामाजिक-नस्ली या किसी अन्य कारण से सताया गया हो और उसे अपने देश से भागना पड़ा हो। शरणार्थी अपनी जमीन से विस्थापित होकर सिर पर साया ढूंढता फिरता है। विश्व भर में अपने देश से दूर रह रहे शरणार्थियों को सम्मान और उन्हें एक पहचान देने के लिए संयुक्त राष्ट्र प्रतिवर्ष 20 जून को विश्व शरणार्थी दिवस मनाता है।

संयुक्त राष्ट्र के आंकड़े यह बताते हैं कि हर बीस मिनट पर विश्व में कुछ लोग अपने आपको आतंक, युद्ध या उत्पीड़न से बचाने के लिए अपने देश को छोड़ कर एक शरणार्थी की जिंदगी गुजारने पर मजबूर हो जाते हैं। इन विस्थापित समूहों में अनेकों प्रकार के शरणार्थी होते हैं। कुछ विस्थापित होने के कारण शरणार्थी बन जाते हैं और शरण चाहनेवालों में गिने जाते हैं। इनमें कुछ स्टेट लेस यानी राज्यविहीन लोग होते हैं, जिनका कोई राष्ट्र नहीं होता। कुछ इनमें अपने देश लौटने की चाह रखने वाले भी होते हैं। शायद इसीलिए यह माना जाता है कि शरणार्थी अपने आप में ही एक ऐसी दुनिया है, जो हर समय गतिशील रहती है।

शरणार्थियों का विश्वव्यापी आंकड़ा बढ़ता ही जा रहा है। वर्ष 2000 में यह संख्या 15.9 मिलियन थी और वर्ष 2015 में यह बढ़ कर 243.7 मिलियन हो गई। इन शरणार्थियों का जत्था विश्व के एक प्रमुख कोने से अधिक आ रहा है। शरणार्थियों के विस्थापन में उन्हें अपनी जान तक गंवानी पड़ती है। वर्ष 2015 में इनकी तादाद 1,638 आंकी गई है और यह संख्या बढ़ ही रही है। कुछ राष्ट्र शरणार्थियों को आसरा दे रहे हैं, इनमें तुर्की जैसा मुल्क सबसे आगे है और कई राष्ट्र इनके लिए अपनी सरहदें बंद कर रहे हैं, जिन में अमरीका सहित यूरोप के कई देश शामिल हैं। विस्थापित बच्चों की हालत बहुत खराब है। आखिर कोई इस पर बात क्यों नहीं करता कि छोटे-छोटे बच्चे आतंक का शिकार हो रहे हैं और अपने देश से दूर बिखरी हुई जिंदगी बसर कर रहे हैं और उनका भविष्य अंधकार में है। शरणार्थी समस्या के साथ इनके साथ होनेवाले अपराधों और हिंसा का भी एक अलग आंकड़ा है, जिसके बारे में हमें गहराई से सोचना चाहिए।

शरणार्थियों की समस्याओं को लेकर जरूरत है एक मजबूत और सहयोगी अंतरराष्ट्रीय प्रतिक्रिया की। आज जरूरत है विश्व के उन इलाकों का निस्वार्थ विश्लेषण करने की, जहां मासूम बच्चे अपने सिर पर छत नहीं केवल शरणार्थी कैंप देख रहे हैं। जरूरत है कि बड़े देश अपनी स्वार्थपूर्ण व्यक्तिगत राजनीति से ऊपर उठ कर काम करें और आगे आकर इंसानियत के नाते इनका साथ दें। हमने पिछले कुछ वर्षों में शरणार्थी मसले को सुलझाने हेतु कई वैश्विक घटनाओं की श्रृंखला देखी है, जिसमें वर्ष 2016 में हुए विश्व मानवतावादी शिखर सम्मलेन और 2016 के फरवरी में लंदन में सीरिया के समर्थन में हुआ सम्मलेन भी है। मार्च 2017 में शरणार्थी समस्या पर विश्वयापी नजर रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र की एक जांच समिति भी गठित की गई। जिन देशों में भी शरणार्थी विस्थापन का मसला है, वहां के हुक्मरान शायद अपने देश के भविष्य से किए हुए वादे को पूरा करने में असमर्थ रहे हैं। अगर आप केवल अरब दुनिया की ओर देखें, तो रमजान के पाक महीने में भी इन्होंने एक-दूसरे पर जुल्म करना नहीं छोड़ा है।

इन देशों के हुक्मरानों को साथ आकर इस मसले को सुलझाने के लिए काम करना चाहिए। छोटे-छोटे स्वार्थ से ऊपर उठने की जरूरत है। इन्हें अपने देश के उन बच्चों को जवाब देना होगा।

**( बाकी पेज 8 पर )**

# राष्ट्रपति चुनाव अगर सिर्फ विचारधारा की लड़ाई है तो उसमें भी विपक्ष हार चुका है

जब से इस बात संभावना बढ़ी कि राष्ट्रपति उम्मीदवार पर सत्ता पक्ष और विपक्ष की सहमति नहीं बन पाएगी और चुनाव होगा, तभी से इस बात की संभावना कम से कम होती गई कि विपक्ष अपने उम्मीदवार को राष्ट्रपति बनवा पाएगा। इसके बावजूद विपक्ष का कहना है कि यह 'विचारधारा की लड़ाई' है, ऐसी प्रतीकात्मक लड़ाई जहां हारने वाला पक्ष भी अपनी बात सबके सामने रख पाता है।

लेकिन ऐसा होता दिख नहीं रहा है। कांग्रेस की अगुवाई में 17 विपक्षी पार्टियों द्वारा मीरा कुमार को राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार बनाने की घोषणा कुल मिलाकर यही बताती है कि विपक्ष ने अपने मौके गंवा दिए हैं। हालांकि इसमें कोई दोराय नहीं कि पूर्व लोकसभा अध्यक्ष अपने पाक-साफ सार्वजनिक जीवन के चलते राष्ट्रपति पद की उम्मीदवारी के लिए पूरी तरह काबिल थीं। लेकिन विपक्ष की दुविधाभरी स्थिति के चलते उनके नाम की घोषणा काफी देर से हो पाई। इसका नतीजा यह रहा कि अब सभी विपक्षी पार्टियां उनके नाम पर एकजुट नहीं दिख रही हैं। और सबसे बड़ी बात यह कि अब मीरा कुमार की उम्मीदवारी को सिर्फ इस तरह देखा जाएगा कि यह गैरभाजपा दलों की तरफ से एनडीए द्वारा दलित उम्मीदवार खड़ा करने के जवाब में उठाया गया कदम है।

विपक्षी पार्टियों की जिस बैठक के बाद मीरा कुमार के नाम की घोषणा हुई, उसमें जदयू अध्यक्ष नीतीश कुमार शामिल नहीं थे। इसकी वजह यह थी कि वे पहले ही एनडीए उम्मीदवार रामनाथ कोविंद के समर्थन की बात कह चुके थे। राष्ट्रपति चुनाव विपक्षी पार्टियों के लिए एकजुटता दिखाने का मौका भी था, लेकिन नीतीश कुमार के चलते विपक्ष ने यह भी गंवा दिया।

### इंडियन एक्सप्रेस का संपादकीय

विपक्ष से जो चूक हुई है उसके पीछे इन पार्टियों का ढीला रवैया और इनके बीच आपस में खुद को ज्यादा महत्वपूर्ण साबित करने की होड़ भी जिम्मेदार है। देश के सबसे ऊंचे संवैधानिक पद के चुनाव के लिए विपक्ष की कमजोर तैयारी किसी तात्कालिक घटना का नतीजा नहीं है। दरअसल मोदी सरकार के बीते तीन वर्षों के दौरान विपक्ष लगातार इसी रवैए का शिकार रहा है।

फिलहाल राष्ट्रपति चुनाव सिर्फ प्रतीकात्मक महत्व का रह गया है क्योंकि संख्याबल स्पष्ट रूप से एनडीए के पक्ष में है। इसके बावजूद चाहे विचाराधारा की लड़ाई हो या जमीनी लड़ाई, गैर-एनडीए पार्टियां लगातार फिसड्डी साबित हुई है या फिर उनका रवैया प्रतिक्रियावादी रहा है। जैसे पिछले साल जब नोटबंदी हुई तो लंबे समय तक वे यह तय नहीं कर पाईं कि इस पर उनका रुख क्या हो। इसके चलते सरकार अपने इस साहसिक फैसले पर आराम से आगे बढ़ती गई। इस बीच देश के अलग-अलग हिस्सों में दो बड़े आंदोलन भी उभरे- दलित आंदोलन और किसान आंदोलन। इनका निशाना सरकार या कहें कि भाजपा थी लेकिन विपक्षी पार्टियों की आंख यहां भी देर से खुली और वे इनका नेतृत्व करने में असफल रहीं।

साल 2014 से भारत में एक मजबूत और निर्णायक सरकार है लेकिन एक ऐसे मजबूत, एकजुट और तार्किक विपक्ष का अभाव है जो महत्वपूर्ण मुद्दों पर गंभीर बहस आगे बढ़ा सके और सरकार की जवाबदेही सुनिश्चित कर सके। जिस लोकतंत्र में चुनाव एक-तरफा होने लगते हैं या होते दिखते हैं, वहां लोकतंत्र जीवंत नहीं लगता। कुल मिलाकर राष्ट्रपति का चुनाव विपक्ष के लिए अपनी बात जनता के सामने रखने का एक मौका हो सकता था, लेकिन ऐसा लग रहा है कि एक बार फिर वह हर मोर्चे पर फिसड्डी साबित होने जा रहा है। *(सत्याग्रह)*

## काँव-काँव

■ दो दलितों के बीच क्या होगा?
■■ फालतू के सवाल मत कीजिए, बैठ जाईये-बैठ-जाईये...

## चौपाल

### स्वच्छ भारत अभियान के नाम पर प्रताड़ना

खुले में शौच जाने वाली महिलाओं की स्वच्छ भारत अभियान के नाम में फोटोग्राफी/वीडियोग्राफी करने से रोकने पर राजस्थान में भाकपा(माले) कार्यकर्ता कामरेड जफर हुसैन की नगर पालिका कमिश्नर के उकसावे पर पालिका कर्मियों द्वारा हत्या। 16 जून 2017 की सुबह राजस्थान में प्रतापगढ़ नगरपालिका कर्मियों द्वारा नगरपालिका कमिश्नर अशोक जैन के उकसावे पर भाकपा (माले) कार्यकर्ता जफर हुसैन की पीट-पीट कर हत्या कर दी गई। कामरेड जफर हुसैन वार्ड नं. 2, कच्ची बस्ती के पास शौच जाने वाली महिलाओं के फोटो और वीडियो बनाने से इन पालिका कर्मियों को रोकने का प्रयास कर रहे थे। इस तरह की फोटोग्राफी और वीडियोग्राफी महिलाओं यौन उत्पीड़न एवं एक आपराधिक कृत्य है। इस बर्बर हत्याकांड ने एक बार फिर इस तथ्य को सामने ला दिया है कि कैसे स्वच्छ भारत अभियान को भी उन्मादी भीड़ हत्याओं और महिलाओं के सम्मान व अधिकारों पर हमले के लिए बहाना बनाया जा रहा है।

कुछ दिन पहले ही कामरेड जफर ने खुले में शौच जाने वाली महिलाओं को सार्वजनिक रूप से अपमानित करने और उनके साथ जबर्दस्ती करने के अभियान के खिलाफ नगरपालिका को एक ज्ञापन दिया था। उस ज्ञापन के माध्यम से उन्होंने स्वच्छ भारत अभियान के तहत सार्वजनिक शौचालयों का निर्माण कराने और बंद पड़े शौचालय की मरम्मत करा चालू कराने की मांग की थी। उन्होंने उक्त ज्ञापन जिलाधिकारी को भी देने की असफल कोशिश की, लेकिन जिलाधिकारी से उसे लेने से ही मना कर दिया। (उक्त ज्ञापन की प्रति इस विज्ञप्ति के साथ संलग्न है)।

हमारी मांग है कि कामरेड जफर की हत्या में नगर पालिका कमिश्नर और एफआईआर में दिए गए अन्य सभी नामजद अभियुक्तों को तत्काल गिरफ्तार किया जाय और उन्हें जल्द से जल्द सजा दी जाय। हमारी यह भी मांग है कि केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा स्वच्छ भारत अभियान की आड़ में आधिकारिक रूप से चलाए जा रहे सार्वजनिक रूप में अपमानित/शर्मसार करने के अभियान को गैरकानूनी घोषित करें, उन्मादी भीड़ हत्याओं व प्रताड़ना की शर्मनाक रणनीति को बंद करें और इन चालों का इस्तेमाल करने वाले अधिकारियों को दण्डित करें।

गरीबों व असहाय लोगों जिनके पास निजी अथवा सार्वजनिक शौचालयों की सुविधा तक उपलब्ध नहीं है, को अपमानित व प्रताड़ित करने से खुले में शौच जाने से रोकने का अभियान नहीं चल सकता। शौचालय अभियान की वर्तमान रणनीति केवल भ्रष्टाचार बढ़ाने, झूठे आंकड़े पेश करने, और गरीब-वंचित नागरिकों को सार्वजनिक रूप से अपमानित करने का काम कर रही है। सरकारें ऐसे बर्बर तौर-तरीके अपनाना तत्काल बंद करें और शौचालयों का प्रयोग करने के लिए एक सकारात्मक अभियान शुरू करें, जिसमें नये शौचालयों का निर्माण, उनमें स्वच्छ व समुचित पानी व सफाई की गारंटी हो। बेहद दमनकारी और अमानवीय हालातों में काम करने के लिए मजबूर सफाई कर्मचारी अपने सम्मान और अधिकारों के लिए पूरे देश में आज संघर्षरत हैं। ऐसे में यह अति दुर्भाग्यपूर्ण है कि जो राजस्थान सरकार उन्हें उनके कानूनी अधिकारों से वंचित कर रही है, वही स्वच्छ भारत अभियान के नाम में उन्हें जनता को अपमानित करने और भीड़ हत्या के लिए इस्तेमाल कर ले रही है।

भीड़ हत्याओं के खिलाफ, महिलाओं के अधिकार व सम्मान के लिए, और सफाई कर्मियों के अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे सभी लोगों से हमारी अपील है कि वे कामरेड जफर के लिए न्याय के संघर्ष में एकजुट हों। हम कामरेड जफर के संघर्षमय जीवन और बलिदान को सलाम करते हैं। वे ऑल इण्डिया कन्स्ट्रक्शन वर्कर्स फेडरेशन के राष्ट्रीय कार्यकारिणी सदस्य और भाकपा(माले) के प्रतापगढ़ जिला कमेटी के सदस्य थे। कामरेड जफर ने स्वच्छ भारत अभियान के नाम में की जा रही प्रताड़ना के खिलाफ महिलाओं के सम्मान की रक्षा करते हुए अपना जीवन बलिदान कर दिया।

**-प्रभात कुमार**
*द्वारा भाकपा (माले) केन्द्रीय कमेटी की ओर से जारी*

### संसद का विशेष सत्र क्यों नहीं

सरकार ही कह रही है, देश में रोज 33 किसान खुदकुशी कर रहे हैं। फिर खेती-किसानी व किसानों के मसलों पर संसद का विशेष सत्र क्यों नहीं? सरकार की मंशा साफ है कि उसकी प्राथमिकता कृषि, खेती किसानी, किसान नहीं है बल्कि व्यापार, कारोबारी, पूंजीपति, उद्योगपति हैं। इसी तरह देश की बदतर, बदहाल, बर्बाद शिक्षा व स्वास्थ्य व्यवस्थाओं पर संसद का विशेष सत्र क्यों नहीं? जबकि ये विकास, प्रगति की मूलाधार हैं। भारतीय राजनीति 21 वीं सदी में भी जाति, वर्ग, धर्म से उपर उठ पाएगी? आम जनमानस में यह एक गंभीर विमर्श का मुद्दा होना चाहिए।

**-डॉ. लखन चौधरी**

### कर्मयोगी

ग्रामीण जीवनशैली में योग उनके काम में ही शामिल है..झाड़ू लगाना, खेतों में काम करना, कुएं से पानी खींचना, मवेशियों को चराना, खाना पकाना इत्यादि. इतने सब काम करने के बाद आराम करना। इसे कर्मयोगी कहते हैं।

**-बाबा मायाराम**

### किसानों-दलितों का आंदोलन

मैं देश के किसानों, दलितों को बहुत तेजी के साथ एक बेहद ताकतवर विपक्ष के तौर पर संगठित होते देख रहा हूँ। एक लाख रुपये की कर्जमाफी किसानों की नाराजगी को खत्म कर देगी या फिर दलित राष्ट्रपति बनाकर दलितों का समर्थन सरकार को हासिल हो सकेगा यह मुश्किल है। बिना किसी नेतृत्व के यह जो संगठन खड़ा हो रहा है ,यह आजादी के तत्काल बाद हो जाना चाहिए था। आने वाले दिनों में यह अपना नेतृत्व भी जिसे चाहेगा उसे सौंप देगा। मुमकिन है इसमें दो चार सालों के वक्त लगे, मगर यह होगा। हिंदुस्तान का मूल चरित्र ही आदिवासी, किसानों,दलितों का है। यहां राज तो उनका ही होना चाहिए। मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र से इसकी आहट सुनाई देने लगी है बस उस दिन का इंतजार है जब यह यूपी, बिहार और झारखंड में पहुंचेगी जहां देश के सर्वाधिक गरीब और उपेक्षित आदिवासी किसान रिहते हैं। देश के कैरेक्टर में न हिंदुओं की सरकार न मुस्लिमों की सरकार फिट बैठती है।

**-आवेश तिवारी**

## दिल से

Everyone in life is gonna hurt you, you just have to figure out which people are worth the pain.